IJRAR.ORG E-ISSN: 2348-1269, P-ISSN: 2349-5138



INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH AND ANALYTICAL REVIEWS (IJRAR) | IJRAR.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

बस्तर अंचल में पंचदेवोपासना का साक्ष्य प्रस्तुत करता एकमात्र स्मार्तलिंग

डॉ· आराधना चतुर्वेदी
पूर्व शोधकर्ता (IKSV Khairagarh)

भूमिका - प्राचीन काल से ही मानव अदृश्य शक्ति को किसी ना किसी रूप में पूजता आया है । मानव सभ्यता का इतिहास मनुष्य के रहन-सहन, खान-पान एवं विचार-चिंतन की गाथा है । वह यह कभी नही भूल सका है कि देवों के साथ उसका ऐक्य है । मानव में विद्यमान मानवत्व उसी दैवतत्व का प्रतीक है । मानव प्रजाति पूजा, उपासना, यज्ञ, भोग, तप आदि अनेक साधनों द्वारा परमतत्व को प्राप्त करने का सतत् प्रयास करता रहा है ।[1]

भारत एक धर्म प्रधान देश है । अतः यहां ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन तीनों धर्मों का पूर्ण विकास हुआ । धर्म के विकास के साथ-साथ धार्मिक अनुष्ठान होने लगे । लोग अपनी धार्मिक आस्थाओं को प्रकट करने के लिए छोटी सी जगह पर चबूतरे के रूप में सबसे पहले बिना छत के देवस्थान बनाये तथा धीरे-धीरे इनका स्वरूप विकसित हुआ । जिसे कालांतर में देवालय, शिवालय तथा देवायतन नाम दिया, उन देवस्थानों को मूर्त देने के लिए विभिन्न प्रतीकों या संकेतों से अपनी धार्मिक आस्था को अभिव्यक्त किया । ये प्रतीक ही समय के साथ-साथ परिवर्तित हुए और विभिन्न देवी-देवताओं के रूप में प्रचलित हुए ।

भारतवर्ष तथा विश्व के अनेक देशो में प्रथमतः जिस धर्म को माना गया, वह शैव धर्म ही है । शैव धर्म प्राचीनतम धर्म है । ब्राह्मण धर्म में ऋग्वैदिक काल से पूर्व शिव की उपासना का प्रचलन रहा है । शिव की पहचान ऋग्वेद में अग्नि तथा इंद्र से की गयी है ।[2] जहां एक ओर भगवान अपने भक्तों के प्रति कृपालु और

अनुग्रहकर्ता है, तो सृष्टि के विनाश हेतु "तांडव-नृत्य" कर्ता भी है । शिव को संगीत, योग तथा नृत्य विधा के प्रणेता के रूप में पूजित किया जाता रहा है ।

शिव के उपासकों का प्राचीनतम उल्लेख पाणिनि[3] के अष्टाध्यायी में मिलता है ।

शिव की पूजा परंपरा वैदिक काल से पूर्व सिन्धु सभ्यता के समय से चली आ रही है । शिव एकमात्र ऐसे देवता है जो यति तथा भोगी, राजा तथा रंक सभी के आराध्य देव है ।[4] शिव को संहारक देवता के रूप में माना गया है । यजुर्वेद में वे शिव, शंकर, गिरीश, शिवतर आदि नामों से पूजित रहे है, रूद्र के नाम में उनकी महत्ता और अधिक बढ़ गयी ।[5] शिव के पांच स्वरूप है जिन्हें क्रमशः सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष एवं ईशान कहा जाता है ।[6]

देवताओं में सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी शिव को माना गया है । सूत्र काल में औषधि के देवता और विघ्नविनाशक के रूप में शिव को प्रतिष्ठित किया गया ।[7]

बस्तर क्षेत्र में ईसा की तीसरी शताब्दी से ही प्रतिमाओं का निर्माण कार्य प्रारंभ हो गया था । बस्तर ग्राम में तीसरी शताब्दी ईसवी की एक विष्णु प्रतिमा मिली है । इसके अलावा इस क्षेत्र से शैव धर्म से सम्बंधित कई प्रकार की प्रतिमाएँ भी प्राप्त हुई है । लगभग 5वीं-6वीं शताब्दी की अन्य प्रतिमायें भोंगापाल, गढ़धनोरा, गुबरहीन तथा देवधनोरा आदि जगहों से प्राप्त हुई है ।[8]

प्रायः शिव की दो रूपों में पूजा की परंपरा रही है -

1· लिंग रूप

२· मानव रूप

शिव की प्रतिमा और लिंग की उपासना का सर्वप्रथम उल्लेख बौधायन गृहसूत्र में मिलता है ।[9] शिव की उपासना का संकेत प्राचीन प्राप्त सिक्कों आदि से भी ज्ञात होता है । सिक्कों में नंदी तथा शिव का अंकन प्राप्त होता है । गोंदोफर्निश, मोयेश तथा कुषाण शासकों के सिक्कों पर शिव की मानव आकृति मिलती है ।[10]

लिंग प्रतिमायें

लिंग की उपासना उतनी ही प्राचीन मानी जा सकती है जितनी कि वृक्ष पूजा । लिंग पूजा, शिव संप्रदाय का मुख्य अंग कहा जा सकता है । हरिवंशपुराण में लिंग तथा योनि को त्रयम्बक तथा उमा से समीकृत किया गया है । हड़प्पा संस्कृति में लिंग के आकार के पाषाण उपकरणों अथवा गोल व आयताकार छल्लों को शिवलिंग और योनि स्वीकार किया गया है । इन छल्लों के आधार पर शिव उपासना की प्राचीनता नवपाषाण काल तक निर्धारित की गयी है ।[11]

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में लिंग के निर्माण के आधार पर शिव लिंग के 3 भाग बताये गए है ।

1. भोग पीठ
2. भद्र पीठ
3. ब्रह्म पीठ

प्रायः मान्यता है कि लिंग पूजा का विकास "शिश्न" पूजा से हुआ है । प्राचीन काल में मनुष्य शिश्न पूजा प्रजनन शक्ति के रूप में करता था ।[12] लिंग के अंतर्गत शिव के एक मुख से लेकर पांच मुखों तक का चित्रण विशेष रूप से किया जाता है, सादे लिंग भी प्राप्त हुए है ।

लिंग के ऊपर का पूजित भाग भोग कहलाता है जो वृत्त के आकार का बनाया जाता है । उसके नीचे का भाग 8 कोणों का तथा सबसे नीचे का भाग चौकोर रहता है । नीचे जलहरी होता है जो एक स्तरीय तथा तीन या चार स्तरों वाला भी होता है ।

स्मार्त लिंग की प्राचीनता एवं विकास - शैव धर्म के अंतर्गत स्मार्त लिंग पूजा या पंचोपासना पद्धति भी प्राचीन काल से चली आ रही है । स्मार्तों की समन्वयवादी दृष्टिकोण के कारण सांप्रदायिक सौहार्द्र व सहनशीलता का भाव उत्पन्न होता है । इसी विचारधारा से प्रेरित होकर ब्राह्मण धर्म में विभिन्न पौराणिक देवताओं की उपासना की परंपरा रही है । इस उदारवादी प्रवृत्ति के कारण ही पंचोपासना, पंचदेवोंपासना, पंचायतन पूजा अथवा स्मार्त पूजा का विकास हुआ । गुप्त काल में उद्भूत स्मार्त पूजा का व्यापक रूप से परवर्ती काल में प्रसार हुआ । इस पूजा की पद्धति का उद्देश्य तत्कालीन समाज में व्याप्त सांप्रदायिक मतभेदों को समाप्त कर समस्त ब्राह्मण धर्मावलम्बियों को एकता के सूत्र में बांधकर एक श्रेष्ठ भारतीय समाज का निर्माण करना था । कालांतर में आदि

शंकराचार्य और कुमारिलभट्ट ने बौद्ध धर्म के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए, ब्राह्मण धर्मावलम्बियों के मध्य विद्यमान सांप्रदायिक कटुता को मिटाकर उन्हें संगठित करने हेतु स्मार्त पूजा का व्यापक प्रचार-प्रसार किया । इसी प्रकार छत्तीसगढ़ के कलचुरि शासकों का उद्देश्य स्मार्त पूजा के द्वारा हिन्दू समाज में व्याप्त साम्प्रदायिक संकीर्णताओं एवं जातिगत विषमताओं का निराकरण करना तथा प्रजा को संगठित कर उनमे राष्ट्रीयता की भावना विकसित करना था । भारतीय कला में समाज के कल्याण और मंगल की भावना सन्निहित है । स्मार्त लिंग इसी भावना के वाहक है । तुम्मान तथा मदकू द्वीप से प्राप्त सभी स्मार्तलिंगो में पांच पिंडो का अंकन मिलता है । इनकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि इनके चारों कोनों पर शिव लिंग जैसी संरचना निर्मित की गयी है जिस पर वलयाकार सर्प लिपटे हुए है । डॉ॰ शंभूनाथ यादव तथा डॉ॰ अतुल कुमार प्रधान ने तुम्मान तथा मदकू द्वीप से प्राप्त स्मार्तलिंगों के आधार पर कहा है कि इस क्षेत्र के शासक शंकराचार्य के वेदांत तथा एकेश्वरवाद से प्रभावित तथा पोषित थे ।[13]

स्मार्त लिंग के दो भेद बताये गए है - प्रथम जिनमें केवल पांच गोलाकार पिंड ही प्राप्त होते है जबकि द्वितीय प्रकार में इसके अतिरिक्त एक लघु आकार का छठा पिंड भी पीठ के मध्य भाग में दर्शाया जाता है, किन्तु अभी तक एक भी ऐसा प्रमाण नही मिला है, जिसका छठा पिंड सुरक्षित हो । प्रथम प्रकार के स्मार्त लिंगो में पांच गोलाकार पिंड पंचदेवों अर्थात् शिव, विष्णु, सूर्य, शक्ति और गणेश के प्रतिक है । द्वितीय प्रकार के स्मार्त लिंगो में उपरोक्त पंचदेवों के साथ ही छठे देवता कार्तिकेय को एक छोटे पिंड के माध्यम से दर्शाया जाता है, क्योंकि आदि शंकराचार्य ने षड्मत का प्रतिपादन किया था जिसके प्रभाव स्वरुप पंचदेवों के साथ कार्तिकेय की भी पूजा होने लगी ।[14]

बस्तर में नडपल्ली गुफा में स्थापित लिंग प्रतिमा को छोड़कर अन्य सभी लिंग सादे है । बारसूर, भैरमगढ़ तथा समलूर के मध्यकालीन मंदिरों में लिंग स्थापित है जो *11* वीं शताब्दी के निर्मित है ।

बारसूर से प्राप्त स्मार्तलिंग - बस्तर क्षेत्र के अंतर्गत बारसूर के मावली माता मंदिर में स्मार्तलिंग स्थापित है । यह *4* शिवलिंग एक साथ गुच्छे की तरह जुड़ा हुआ काले प्रस्तर से निर्मित है जो कि नीचे की ओर धंसा हुआ है । शिवलिंग की चमक देखकर लगता है कि पत्थर को तराश कर बहुत ही चिकना किया गया है । इसमें किसी प्रकार की जलहरी दिखलाई नहीं पड़ती । शोध कर्ता को यह स्मार्त शिवलिंग पीएचडी शोध भ्रमण के दौरान प्राप्त हुई थी । शायद इस क्षेत्र से प्राप्त शिवलिंगों में यह एकमात्र स्मार्तलिंग है । आश्चर्य की बात यह है कि इस

स्मार्तलिंग के चारों कोनों में अन्य शिवलिंग जैसी कोई आकृति नही मिलते या फिर लम्बे समय अन्तराल में टूट गए हो । इसमें केवल मध्य भाग में *4* पिंड है पांचवा नही है और न ही पांचवें पिंड का कोई साक्ष्य है । इसके अलावा इसमें चारों पिंड लगभग *8* से *10* अंगुल ऊँचा है जो कि मदकू द्वीप और तुम्मान से प्राप्त स्मार्त लिंगो की अपेक्षा अधिक ऊँचा है । यह स्मार्तलिंग लगभग *10-11* वीं शती॰ में निर्मित है । यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दंतेवाड़ा का यह क्षेत्र शंकराचार्य के वेदांत तथा एकेश्वरवाद से थोड़ा ही प्रभावित रहा होगा । *(चित्र क्र॰-1), (मदकू द्वीप से प्राप्त स्मार्त लिंग, चित्र क्र॰-2)*

बस्तर से प्राप्त अन्य शिवलिंग -

बत्तीसा मंदिर के शिवलिंग - बस्तर के नाग शासक सोमेश्वरदेव की पत्नी गंगमहादेवी द्वारा बनवाये गये बत्तीसा मंदिर के दो गर्भगृहों में शिवलिंग स्थापित है, जो क्रमशः सोमेश्वर तथा गंगधरेश्वर के नाम से पूजित थे । आज भी इस मंदिर में इनकी पूजा होती है । बत्तीसा मंदिर में *32* स्तंभों के कारण इस मंदिर को बत्तीसा कहा जाता है । इस मंदिर के गर्भगृह में स्थापित शिवलिंग तीन स्तरीय जलहरी के ऊपर निर्मित है । *(चित्र क्र॰-3 व 4)*

गुबरहीन का शिवलिंग - गुबरहीन के टीले के ऊपर भग्न अवशेषों के बीच विशाल शिवलिंग बस्तर रियासत के तत्कालीन दीवान पंडा बैजनाथ को *1907* में मिली थी । यह पूर्व मध्यकाल में निर्मित है ।[15] जिसका अन्वेषण जी॰ के॰ चंद्रौल द्वारा कराया गया । *(चित्र क्र॰- 5)*

***16* खम्बा मंदिर में स्थापित शिवलिंग -** बारसूर के सोलह खम्बा मंदिर की साफ सफाई के पश्चात गर्भगृह में शिव लिंग की प्राप्ति हुई है । जो कि गोल जलहरी के मध्य स्थापित है । यह शिवलिंग कोटा स्टोन *(*लाइम स्टोन*)* से निर्मित है । यह शिव लिंग लगभग *9*वीं शती ईसवी में निर्मित है । *(चित्र क्र॰- 6)*

गढ़धनोरा से प्राप्त विशाल शिवलिंग - गढ़ धनोरा से प्राप्त शिवलिंग अन्य की अपेक्षा बड़ी है । जिसे यहाँ के प्राचीन टीलों की सफाई के दौरान प्राप्त किया गया है । यह शिवलिंग जलहरी रहित है । यहाँ के टीलों में इंटों से निर्मित मंदिरों की पहचान की गयी है । इन्हें देखकर डॉ॰जी॰के॰ चंद्रौल जी ने *5*वीं-*6*वीं शती ईसवी में नलवंशी शासकों द्वारा निर्मित बताया है । यह भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा संरक्षित किया गया है । *(चित्र क्र॰- 7)*

निष्कर्ष - इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बस्तर के इस क्षेत्र में शैव धर्म के साथ पंचदेवों की पूजा का प्रचलन था । इसके अलावा यह भी जानकारी मिलती है कि आदि शंकराचार्य के वेदांत तथा एकेश्वरवाद से इस क्षेत्र के शासक उस काल में प्रभावित थे । हालाकिं इस क्षेत्र में यह केवल एक ही स्मार्त लिंग मिला है जो कि इस क्षेत्र में अन्यत्र नही है ।

सन्दर्भ सूची -

1· मिश्र, इंदुमती, प्रतिमा- विज्ञान, म·प्र· 1987 पृष्ठ क्र· 79

2· ऋग्वेद 1,114,2 - 1,43·4

3· पाणिनि की अष्टाध्यायी पर पतंजलि का भाष्य 5,2,36

4· वर्मा, कामता प्रसाद, छत्तीसगढ़ का पुरातत्व एवं प्रतिमाये, रायपुर 2019, पृष्ठ क्र· 88

5· वाजसनेयी सहिंता ,9,39, तैतरीय सहिता 2,2,10

6· तैतरीय अरण्यक, 1043-47, विष्णुधर्मोत्तर पुराण 3·48:1

7· झा, वी·डी·, बस्तर का मूर्तिशिल्प , भोपाल 1989, पृष्ठ क्र· 70

8· *Proceedings of the seminar, Sanskriti Sanchalnalay Raipur 2018, page no· 117·*

9· झा, वी·डी·, बस्तर का मूर्तिशिल्प , भोपाल 1989, पृष्ठ क्र· 70

10· वर्मा, के·पी·, बस्तर की स्थापत्य कला, रायपुर 2008, पृष्ट क्र· 42

11· झा, वी·डी·, बस्तर का मूर्तिशिल्प , भोपाल 1989 पृष्ठ क्र· 69

12· कोसल, अंक 11 पृष्ठ क्र· 6

13· मदकू द्वीप उत्खनन, पृष्ट क्र· 63-64

14· विश्वकर्मा, आर·एन·, छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक विरासत, 2012, पृष्ठ क्र· 33-34

15· झा, वी·डी·, बस्तर का मूर्तिशिल्प , भोपाल 1989 पृष्ठ क्र· 71

छायाचित्र



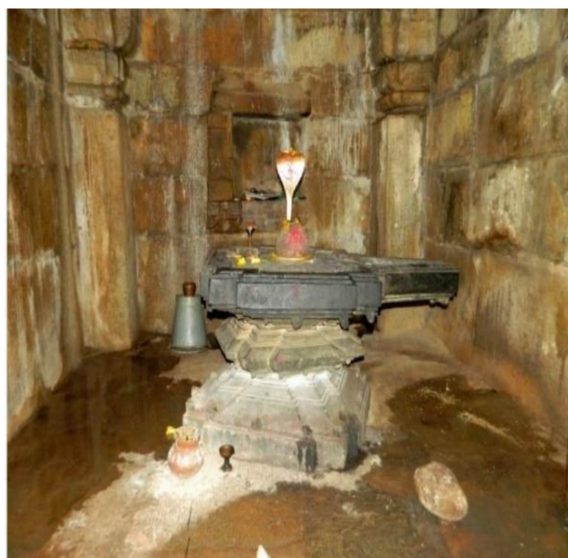


चित्र- 1

चित्र- 2



चित्र- 3



चित्र- 4



चित्र- 5



चित्र - 6



चित्र - 7